मानव मन की सशक्त अभिव्यक्तिः लोकसंगीत

रूचिका सिंह
शोधार्थी,
आर0जी0 पी0जी0 कालिज, मेरठ
Email: ruchikarana1988@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

रूचिका सिंह

''मानव मन की सशक्त अभिव्यक्तिः लोकसंगीत''

Artistic Narration 2020, Vol. XI, No. 1, pp. 61-65

https://anubooks.com/?page_id=6863

सारांश

किसी भी देश का लोकसंगीत उस देश के शास्त्रीय संगीत एवं संस्कृति से बहुत कुछ संबंधत रखता है। संगीत के सात्विक भाव का निदर्शन लोकसंगीत के द्वारा ही भली भांति किया जा सकता है। लोकजीवन का सुन्दतरम प्रतिबिम्ब लोकसंगीत में ही दिखाई देता है क्योंकि लोकगीतों के शब्दों तथा स्वरों के चमय में कृत्रिमता का अभाव रहता है। लोकगीत व्यक्ति के बाहय जीवन के साथ साथ उसके मानसिक भावों के भी परिचायक होते हैं।

संगीतमयी प्रकृति जब गुनगुना उठती है, जब लोकगीतों का स्फुरण होना स्वाभाविक है। इसमें महिलाओं का विशेष योगदान रहा क्योंकि परिवार व समज में होने वाले त्यौहारों व पारिवारिक उत्स्वों पर अपनी अभिव्यक्ति के लिए महिलाओं ने लोकगीतसें का सहारा लिया। लोकगीत मानवीय संवेदनाओं के संवाहक के रूप में माधुर्य प्रवाहित कर हमें तन्मयता के लोक में पहुचा देते हैं। गान मानव ह्रदय के लिए स्वाभाविक है फिर चाहे सुख हो या दुःख। सुख में गाकर मानव उल्लसित होता है ता वहीं दुख में गाकर दुख को भूलता है। इन लोकगीतों में प्राकृतिक सौन्दर्य, सुख–दुख और विभिन्न संस्कारों को बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। लोकगीत जनमानस की विभिन्न भावनाओं को अभिव्यक्त करने के सशक्त माध्यम साबित होते हैं।

मुख्य शब्दः *लोकसंगीत, अभिव्यक्ति, संवेदना, जनमानस, संवाहक, मर्मस्पर्शी।*

प्रस्तावना

लोक शब्द अपने आप में अति व्यापक अर्थ संजोये आदिकाल को विश्व इतिहास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता आया है। आदिकाल से ही इस वसुन्धरा पर अपनी विविध स्थितियों में विचरण करते हुए अथाह मानव समाज को ही लोक नाम को विभूषित किया गया है। लोक से अभिओत कोई एक मानव विशेष नहीं हो सकता अपितु समस्त समाज को ही लोक नाम से पुकारा जाता है। लोक शब्द शास्त्रों में सम्पूर्ण सृष्टि के लिए प्रयुक्त हुआ, जो कालान्तर में सामान्य बोलचाल की भाषा में लोग हो गया तथा लोक अथवा लोग शब्द का प्रयोग जनसाधारण के लिये किया जाने लगा। लोक कला कृतियां लोक सापेक्ष होती हैं, उसमें निहित भावनायें किसी एक व्यक्ति से संबंधित न होकर समस्त समाज से संबंध रखती हैं।

लोक संगीत किसी भी देश–प्रदेश अथवा स्थान विशिष्ट की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का दर्पण होता है। मनुष्य ने जब अपनी दिनचर्या का कार्य करते समय कुछ गुनगुनाया, बजाया तथा ख़ुशी को अंग संचालन द्वारा व्यक्त किया, तो विद्वानों ने इसे लोक संगीत का नाम प्रदान किया। लोक संगीत का अभिप्राय जनमानस की साधारण अभिव्यक्ति से है। लोक संगीत का जन्म व्यक्ति के नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्सवों, त्यौहारों रीति–रिवाजों एवं सामूहिक कार्यों द्वारा हुआ है। यह मानव मन की अनुभूतियों की सरल, निर्दोष, उन्मुक्त, स्वच्छन्द और सहज अभिव्यक्ति का परिचायक है। लोक संगीत का विषय भी उतना ही व्यापक है, जितना लोकजीवन का। अतः जीवन का कोई प्रसंग, भावना या प्रवृत्ति इससे अछूती नहीं है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार जो संगीत देश, काल और जाति आदि के आधार पर स्वयं बनता है, फलता–फूलता है, वह लोक संगीत है। लोकसंगीत किसी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं करता। यह पूर्ण रूप से स्वान्तः सुखाय है। जो लोक के द्वारा, लोक के लिए है तथा लोक का रंजन करता है, वह लोक संगीत है। संक्ष्ज्ञेप में लोक संगीत जन–जीवन की उल्लासमय अभिव्यक्ति है।

लोक संगीत भिन्न–भिन्न प्रान्तों का होते हुए भी सुनने वालों के मन को मोहकर अपनी ओर आकर्षित करता है। डा0 राधा कृष्णन जी के अनुसार लोक संगीत द्वारा सामाजिक जीवन का कोश संचित हुआ है। जनसाधारण के लिए स्वप्न, आदर्श, उद्देश्य तथा कल्पना सब कुछ लोक संगीत में ही मुखरित होता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि मार्गी संगीत में विभिन्न परिवर्तनों का परिणाम ही लोक संगीत है। अथवा वाग्गेयकारों ने अपनी बुद्धि से प्राचीन निबद्ध संगीत में परिवर्तन करके एक नए संगीत की रचना की जिसे गान या देशी संगीत कहते हैं। डा0 परांजये के अनुसार संगीत की दो धाराएं आरम्भ से ही रही है एक मार्गी और दूसरी देशी। इनमें एक शास्त्रीय संगीत था तो दूसरा लोक संगीत था, इनमें कोई संदेह नहीं कि देशी संगीत के विकास की पृष्ठभूमि लोकसंगीत है।

लोकसंगीत में हमारी प्राचीन संस्कृति की झलक दिखायी देती है। लोकसंगीत में किसी विशेष स्वर को महत्व नहीं दिया जाता है। इसमें बिना किसी प्रयास के खटका या मुर्की आदि नाद के सूक्ष्म तत्वों का प्रयोग स्वयं ही हो जाता है। भाषा भी लोकसंगीत का प्रमुख अंग है, सरल और सहज स्वरात्मक एवं लयात्मक प्रयोगों से सुसज्जित लोकभाषा का प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति में अधिक सहायक होता

है। लोकगीतों में प्रदेश विशेष की भाषा ही प्रयुक्त होती है, जिसके कारण भाषा का अस्तित्व कायम रहता है।

लोकगीत भारतीय संस्कृति की अनूठी धरोहर है। काव्य रस से ओतप्रोत, स्वरसने, लय–लसे, हृदय तल से उभरे सदा–सर्वथा मनोहारी। विविधता में एकता के साक्षात प्रतीक। भाषाएं भिन्न, बोलियां विभिन्न किन्तु विषय वस्तु, स्वर संयोजन तथा लयप्रवाह में लगभग समानता। इनकी लघुकाय धुनों को सुनकर बिहारी सतसई विषयक उक्ति सहज ही मानस में गूंज उठती है–

''सतर्सया के दोहरे, ज्यों नानक के तीर।
देखन में छोटे लगे, घाव करे गंभीर।''

भारत की प्राचीन संस्कृति लोकगीतों मेंरची बसी है। इतिहास, धर्म, पुराण, दर्शन, तीज त्यौहार आदि में हमारे लोक जीवन की झलक समय समय पर लोकगीतों में दिखाई देती है और इनमें प्रयुक्त लोकवाद्य इनको द्विगुणत आनन्द प्रदान करने में सहायक हैं। लोकगीत उस वृक्ष के समान है, जो कहीं जड़ में अव्यक्त है, कहीं पत्तों में लहराता है, कहीं फूलों में मोहक है, कहीं फलों में उपयोगी है और कहीं बीज में सृजनशील है।

जीवन के निरंतर चलने वाले संघर्षों के क्षणों का अखण्ड अविचल आत्मबल ही लोकगीतों की प्रधान स्वर है तथा इसी से जुड़ा है यह विचित्र लोकसंसार जिसमें अंगड़ाई लेते हुए अंकुर हैं, धान के खेतों के पास पपीहा है, दूब का नीला आंचल है, अम्मा के घर आंगन में उतरती हुई किरनपरी है, हंसता हुआ सूरज है, सलोना चांद है, नदिया के पार से आती हुई दूर की पुकार है, अपने सनोहिया की बाट बटोरने वाली विरहनी अंखियां है, जाने–अनजाने मीत हैं और वह सबकुछ तो है जो धरती को सौ–सौ स्वर्गों से अधिक प्यार करने योग्य बना देता है। मनुष्य के जीवन के प्रत्येक क्षण, प्रत्येक पक्ष के लोकगीत व्यापक हैं। वह जन्म से लेकर मृत्यु तक इन्हीं लोकगीतों से स्व्यं को प्रस्तुत करता है, उल्लासित होता है।

''हृदय की अनुभूतियां तरंगित होकर जब प्रकृति के मध्य बहने लगती हैं, तो लोक संगीत का जन्म होता है।''

–निराला

लोकसंगीत अपनी सहजता और सरलता के कारण प्राचीनकाल से ही भारतीय जनमानस में अत्यंत लोकप्रिय रहा है। कहा जाता है कि आदि मानव को जब भाषा का ज्ञान भी नहीं था तब भी लोकसंगीत विद्यमान था और आदि मानव भाषा के अभाव में विभिन्न ध्वनियों के द्वारा ही अपने मनोभावों को प्रकट करते थे। लोकसंगीत वह संगीत है, जो मौखिक परंपरा में निहित रहता है। लोकसंगीत जन सामान्य की भाषा में ही गाया बजाया जाता रहा है तथा जनसामान्य स्वतः ही अपनी रूचि के अनुसार उसे गाता बजाता रहता है। स्थानीय वेशभूषाओं, अनुभूतियों, रीति–रिवाजों, परम्पराओं का संबंध इसमें सहज रूप से ही होता है। लोकगीतों की शब्द व स्वर रचनाएं किसी निश्चित विधान से नहीं की जाती, उसकी संरचना तो गायक के मन की आवाज है, जो उसकी सुविधा के अनुरूप की होती है।

लोकसंगीत के दो पक्ष हैं–

1. लोक गीतों की गायन पद्धति
2. लोक वाद्यों का सहकार

लोकगीत धरती के गीत हैं, ये जीवन के गीत है, ये विजय के गीत है, ये मंगल के गीत हैं। जनता के द्वारा रचे गए, जनता के जीवन से संबंध रखने वाले ये गीत जनता की ही सम्पत्ति है। लोकगीतों का सामान्य वर्गीकरण इस प्रकार है–

1. संस्कार गीत

बच्चे का जन्म, मुडंन, यज्ञोपवीत, विवाह, गौना, मृत्यु संबंधी गीत।

2. ऋतु या माह गीत

चैती, कजरी, बारहमासा, होली, चौमासा आदि।

3. धार्मिक गीत

तीज, व्रत के गीत, गोधन, भक्तिपरक गीत आदि।

4. जाति या श्रम गीत

अहीर, चमार, गोंड, कहार, धोबियों के गीत आदि।

5. क्रिया गीत

रोपनी, सोहनी, जंतसार के गीत।

6. सामयिक गीत

युग की घटनओं से प्रभावित गीत, मुगलों के अत्याचार स्वतंत्रता संग्राम के गीत, देश प्रेम के गीत आदि।

7. अन्य गीत

बच्चों या बड़ों के खेल संबंधी गीत।

लोकसंगीत मानव जीवन की भावनाओं की सरल अभिव्यक्ति है। इनमें मनुष्य की पारिवारिक, सामाजिक जीवन की झलक दिखाई पड़ती है। लोकगीतों में हमारी मूल संस्कृति के दर्शन होते हैं। लोकसंगीत जीवन में खुशियों, स्वास्थ्य और सौन्दर्य का आधार तो है ही, साथ ही यह मनुष्य के मानसिक तथा सामाजिक विकास में भी सहायक है। लोकगीत अपनी सरलता तथा स्वाभाविकता के कारण जन–जन के मन में अपना स्थान बना चुके हैं। लोकगीतों के पीछे सामाजिक परम्परा होती है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। लोकसंगीत द्वारा जनजीवन के सभी पक्षों का समक्षीकरण होता है। लोकगीत समाज की धरोहर ही नहीं अपितु लोक जीवन का वर्दण भी है, इन गीतों के श्रवण से आत्मिक रस की अनुभूति होती है।

हमारे समाज में जो कुछ भी घटित होता है, लोक उसके सकारात्मक पक्ष ग्रहण करके तथा दीर्घ चिन्तन से उत्पन्न अपनी सोच में उसक ढालता अर्थात् आत्मसात करके पुनः समाज को लौटा देता है। लोकजीवन की सच्ची झांकी क्षेत्र की कलाओं में देखने को मिलती है। प्रत्येक जाति के लागों का रहन–सहन, धर्म संस्कार एक दूसरे से थोड़ा भिन्न होता है। यह भिन्नता उनके दैनिक जीवन के

क्रियाकलापों में व्यक्त होती है तथा लोक संगीत इसे आत्मसात् कर लेता है। यह लोकसंगीत का ऐसा पक्ष है जिससे क्षेत्रीयता की पहचान बनती है। बगज की होली, अवधी या भोजपुरी लोकगीत, चैती, कजरी आदि ऐसे लोकगीत है, जिससे एक निश्चित क्षेत्र के लोकसंगीत का बोध होता है।

भारत विशाल देश होने के नाते विभिन्न बहुमूल्य लोकगीतों से भरा पड़ा है। ये गीत इस विशाल क्षेत्र पर बसे विभिन्न सम्प्रदायों की संस्कृति को प्रदर्शित करते हैं। भारतीय लोकगीत पौराणिक तथा परम्परागत कथाओं से गुंथे हुये हैं जिस कारण इनकी मान्यता सर्वव्यापक है। लोकगीत किसी काल विशेष या कवि विशेष की रचनाएं हैं, इसलिए अधिकांश लोकगीतों के रचियताओं के नाम अज्ञात हैं। दरअसल एक ही गीत तमाम कंठों से गुजर कर पूर्ण हुआ है। हमारे देश का कोई ऐसा उत्सव नहीं है जो इन लोकगीतों के बिना पूर्ण होता है। लोकगीत हमारे समाज को जो कि त्यौहारों तथा उत्स्वों पर इकठठा होते हैं उनमें सामूहिकता का निर्माण करते हैं, जो समाज को बांधे रखने के लिए अति आवश्यक है।

प्राचीनकाल से ही मनुष्य लोकसंगीत के माध्यम से अपनी संवेदनाओं को प्रकट करता है। मनुष्य जन्म से मृत्यु तक जीवन पर्यन्त अपने ह्रदय के उद्गारों को लोकसंगीत के द्वारा प्रकट करता रहा है। तथा विषय में करता रहेगा। इन लोकगीतों में जीवन की वास्तविकता के भी दर्पण होते है, जीवन का सत्य सम्मुख आता है, जीवन का शाश्वत रूप प्रकट होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डा0 पूर्ण चन्द शर्मा, *हरियाणा की लोकधर्मी नाट्यपरम्परा,* पृ **29**।
2. डा0 लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ **164**
3. रामनेरश त्रिपाठी, *कविता औभूदि,* ग्रामगीत भाग–1, पृ **2**
4. श्रीमति शान्ति गोवर्धन, *संगीत शास्त्र दर्पण*–2, पृ **2**।